



INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

“गांधी—वाङ्मय में राजनीति एवं मानव जीवन का अन्तःसम्बन्ध”

डॉ. सुनीता त्रीपाठी

विभागाध्यक्ष (एसो. प्रो.) लोक प्रशासन विभाग

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु सिद्धार्थ नगर

सारांश

सामान्य धारणा यह है कि भारतीय मनीषा राजनीति की बजाय अध्यात्म पर बल देती है किंतु गांधी का मानना है कि मानव जीवन के अंतिम लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति राजनीतिक — सामाजिक जीवन में सक्रिय सहभागिता के द्वारा ही संभव है। आज जिसे हम राजनीतिक समाजीकरण या जन—सहभागिता के अर्थ में जानते हैं गांधी के लिए यह मनुष्य के आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग है। गांधी की दृष्टि में राजनीति का वास्तविक आदर्श परानुभूति है जिसके द्वारा मनुष्य ‘आत्मवत् सर्वभूतेषु’ के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। अतः गांधी की अवधारणा में राजनीति एवं अध्यात्म परस्पर विरोधी नहीं है। किंतु वे राजनीति के वर्तमान अर्थ—“शक्ति या सत्ता की प्राप्ति के लिए किए जाने वाला संघर्ष”— को उचित नहीं मानते थे। वे उसे सेवा का मार्ग मानते थे और सेवा का मार्ग उनकी दृष्टि में ईश्वर तक ले जाने वाला मार्ग है। वे स्पष्ट कहते हैं कि—“यदि मैं समझता कि ईश्वर मुझे हिमालय की कंदराओं में मिलेंगे तो मैं तुरंत वहाँ चला जाता किंतु मैं जानता हूँ कि मानव समूह से पृथक मैं उन्हें कहीं नहीं प्राप्त कर सकता।”¹ वे यह स्वीकार करते हैं कि वर्तमान समय में राजनीति से नीति के प्रश्न को दूर कर दिया गया है। यही कारण है कि आज विश्व अनेकानेक समस्याओं का सामना कर रहा है, किंतु उनकी दृष्टि में इसका समाधान राजनीति से पलायन नहीं है। गांधी इसके लिए धर्म तथा नैतिकता से राजनीति को निर्देशित और नियंत्रित करना चाहते थे। अतः यह कहना न्याय संगत है कि “यदि राष्ट्र संचालन के लिए राजनीति का बहुत मूल्य है तो पवित्र राष्ट्रीय वातावरण के लिए धर्म बहुत मूल्यवान है।”² गांधी स्पष्ट कहते हैं कि नैतिक मूल्य व्यवस्था

के विशुद्धीकरण के लिए होते हैं इसलिए राजनीति को भी धर्म एवं नैतिकता से निर्देशित होना ही चाहिए। अन्यथा राजनीति स्वार्थ-नीति बनकर रह जाएगी।

कुंजी शब्द – आध्यात्मिक, आत्मोपलब्धि, तादात्म्य, सर्वभूतेषु, राजनीतिक शुद्धता, परमार्थ, सर्वोदय अन्तःसम्बन्ध।

व्यक्ति, समाज एवं जीवन मूल्यों से संबंधित गांधी के विचारों में ऐसे तथ्यों की खोज आसानी से की जा सकती है जो सनातन परंपरा के मूलभूत तत्त्व रहे हैं। वस्तुतः उनके व्यक्तित्व की जड़ें अपने देश की धरती में समाई हुई थीं। इसलिए गांधी चिंतन का आधार भारतीय संस्कृति के अतिरिक्त कहीं और ढूँढना निरर्थक है। उपनिषद्, योगसूत्र, वेद, भगवद्गीता तथा जैन और बौद्ध दर्शन गांधीजी के मूलभूत दार्शनिक धारणाओं के प्रमुख स्रोत हैं। गांधी जी ने इनकी महान परंपरा का ही अनुसरण किया है किंतु वे रूढ़िवादी या प्रतिक्रियावादी नहीं थे। जब कभी भी वे इन्हें मानवता के सिद्धांतों के विरुद्ध जाता हुआ देखते थे तो उन्हें चुनौती देने में भी गांधीजी हिचकिचाते नहीं थे। वे मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना चाहते थे। किंतु विकास उनकी दृष्टि में पाश्चात्य जगत की अवधारणा के समान भौतिक न होकर आध्यात्मिक था। वे व्यक्ति को नैतिक-आध्यात्मिक दृष्टि से इस सीमा तक ऊँचा उठाना चाहते थे कि व्यक्ति द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, लोभ, क्रोध, हिंसा इत्यादि मानवीय दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य 'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम' की सिद्धि कर सके।

मानव जीवन एवं मूल्यों के प्रति गांधी की दृष्टि उनके राजनीति संबंधी विचारों में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। गांधी जी सत्य के अन्वेषी थे और उनकी दृष्टि में जो मनुष्य सत्य के सर्वव्यापी भावना की उपलब्धि का आकांक्षी है वह अपने को जीवन के किसी भी क्षेत्र से अलग नहीं कर सकता है। अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं कि— "ऐसे व्यापक सत्यनारायण के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए जीव मात्र के प्रति आत्मवत् प्रेम की परम आवश्यकता है और जो मनुष्य ऐसा करना चाहता है, वह जीवन के किसी भी क्षेत्र से बाहर नहीं रह सकता। यही कारण है कि सत्य कि मेरी पूजा मुझे राजनीति में खींच लाई है।"³

अतः गांधी चिंतन में राजनीति एवं मानव जीवन का संबंध अविच्छिन्न है। यद्यपि वर्तमान समय में राजनीति को नीति से पृथक कर राजनेता अपने मार्ग से विमुख हो गए हैं। इसीलिए गांधी जी वर्तमान राजनीति को अपरिहार्य दोष के रूप में देखते हुए कहते हैं कि "यदि मैं राजनीति में भाग लेता हूँ तो सिर्फ इसलिए कि आज राजनीति ने हमें नागपाश की तरह जकड़ रखा है, जिससे कोई कितनी भी चेष्टा क्यों न कर छूट नहीं सकता। मैं इस नाग से जूझना चाहता हूँ, सच ही मैं राजनीति में धर्म का प्रवेश कराने की चेष्टा कर रहा हूँ।"⁴ वे धर्म को राजनीतिक शुद्धीकरण का मार्ग मानते हैं और राजनीति को सामाजिक-नैतिक प्रगति के साधन के रूप में देखते हैं। धर्मविहीन राजनीति उनके लिए मृत्यु जाल के समान है। अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं कि "जो लोग यह कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कोई संबंध नहीं है वे धर्म का वास्तविक अर्थ नहीं जानते हैं।"⁵ गांधी का मानना है कि मानव जीवन की सार्थकता

राजनीति से पलायन में नहीं वरन् राजनीति में सक्रिय सहभागिता स्थापित कर राजनीति के शुद्धिकरण का मार्ग प्रशस्त करने में है। जब वे राजनीति को एक बुराई अथवा नाग (सांप) से तुलना करते हैं तो उनका तात्पर्य वर्तमान राजनीति के उस विकृत स्वरूप से है जहाँ राजनीति को पद और सत्ता पाने के एक साधन के रूप में देखा जाता है। गांधी के लिए राजनीति समाज सेवा का साधन है न कि धन, पद और शक्ति प्राप्त करने का साधन। राजनीति और मानव जीवन के अंतरसम्बन्ध को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं कि सामाजिक कार्य राजनीति के बिना संभव नहीं है। सामाजिक न्याय एवं समानता की स्थापना के लिए राजनीतिक दासता, आर्थिक शोषण एवं सामाजिक उत्पीड़न को समाप्त करना अनिवार्य है। मानवता की सेवा ही मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है और इस धर्म के पालन के लिए राजनीति में भाग लेना मनुष्य का कर्म है। स्वयं अपने बारे में उन्होंने लिखा है कि—“तब तक मैं धार्मिक जीवन अतिवाहित नहीं कर सकता जब तक कि मैं सम्पूर्ण मानव जीवन के साथ तादात्म्य नहीं कर लेता और वह मैं तब तक नहीं कर सकता जब तक कि मैं राजनीति में भाग नहीं लेता।”⁶

महात्मा गांधी राज्य की शक्ति में वृद्धि को आशंका की दृष्टि से देखते थे। उनकी आस्था व्यक्ति के अधिकाधिक स्वतंत्रता में थी। वे समाज का विकास इस सीमा तक करना चाहते थे जिसमें राज्य का अस्तित्व अनावश्यक हो जाए, परंतु वह इसे एक आदर्श मात्रा मानते थे। इसलिए प्रूथों, बाकुनिन एवं क्रोपाटकिन की तरह वे राज्य को समाप्त करने की बजाय राज्य का संतोषजनक पुनर्गठन करने पर बल देते हैं। राज्य संबंधी इस विचारधारा के कारण कुछ विचारक गांधी जी को अराजकतावादियों की श्रेणी में रखते हैं। किंतु व्यक्ति के संबंध में उनका दृष्टिकोण अराजकतावादियों से बिल्कुल भिन्न था। वे व्यक्ति को मूलतः एक ऐसा सामाजिक प्राणी मानते थे जिसका सम्बन्ध राज्य के साथ न सही समाज के साथ अविच्छिन्न और अटूट है। अतः गांधी को परंपरागत अराजकतावादियों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। गांधी ने न राज्य को और अस्वीकार किया न राजनीति को। अराजकतावादियों के विपरीत उन्होंने समाज के हाथों में जन जागृति और सत्याग्रह के रूप में एक ऐसी शक्ति दी जो किसी भी राज्य को, चाहे वह कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, नियंत्रित रखने में सक्षम हो। इसलिए यह कहना सत्य नहीं है कि गांधी जी राजनीतिक शक्ति में विश्वास नहीं करते थे। परंतु उनमें और सत्ता के लिए संघर्ष करने वाले व्यक्तियों में अंतर यह था कि वे राजनीतिक शक्ति को स्वयं में लक्ष्य नहीं मानते थे, बल्कि एक साधन मानते थे जिसके माध्यम से जनता केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी स्थिति सुधार सकती है।

गांधीजी मानव जाति की पूर्ण एकता में विश्वास रखते थे इसलिए वे सम्पूर्ण मानव जाति से तादात्म्य स्थापित करने में सफल रहे। उनके लिए जीवन के उद्देश्य आत्मोपलब्धि की तब तक सिद्धि नहीं हो सकती जब तक “सर्वोदय” की स्थिति नहीं बन जाती और लौकिक व्यापारों में भाग लिए बिना यह असम्भव है। गांधीजी

की दृष्टि में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मनुष्य की विविध प्रचेष्टाएं एक दूसरे से सर्वथा कटी हुई न होकर परस्पर सम्बद्ध हैं और वे मिलकर एक समग्र की रचना करती हैं।

महात्मा गांधी के अनुसार राजनीतिक दासता, आर्थिक शोषण एवं सामाजिक उत्पीड़न सर्वोदय की सिद्धि में बाधाएँ हैं। अतः आत्मोपलब्धि के इच्छुक का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि वह ऐसी समाज व्यवस्था स्थापित करे जिसमें मनुष्य राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक स्वावलंबन एवं सामाजिक गौरव की अनुभूति कर सके। राजनीति में उनका भाग लेने का उद्देश्य यही था कि राजनीति में धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित कर मानवता की सेवा कर सकें। वे धर्म को राजनीतिक शुद्धिकरण का मार्ग मानते थे और राजनीति को सामाजिक-नैतिक प्रगति के साधन के रूप में देखते थे। गांधीजी के लिए धर्म एवं नैतिकता में कोई भेद नहीं था उनके अनुसार धर्म का सच्चा रूप नैतिक सिद्धांतों का जीवन के प्रत्येक कार्य क्षेत्र में हर समय पालन करने में है।

गांधी जी के राजनीतिक-सामाजिक-नैतिकता सम्बन्धी विचारों की पूर्वपीठिका मानव स्वभाव सम्बन्धी उनकी विशिष्ट अवधारणा है। उनके अनुसार मनुष्य मूलतः एक नैतिक प्राणी है जो विवेक, विभिन्नता में चयन शक्ति एवं स्वतंत्र संकल्पनात्मक क्षमता रखता है। वह पशु से इन्हीं गुणों के कारण भिन्न हो जाता है कि जहाँ पशु मात्र संवेगो एवं प्रवृत्तियों द्वारा निर्देशित होता है वहाँ मनुष्य विवेक और हृदय के सूक्ष्मतम गुणों के द्वारा भी संचालित होता है। अपनी आत्मकथा में गांधीजी लिखते हैं कि पशुओं में स्वानुशासन का अभाव होता है। मनुष्य, मनुष्य इसलिए है क्योंकि उसमें स्वानुशासन है। वह उस स्तर तक महान है जिस सीमा तक वह मानव कल्याणार्थ योगदान देता है। गांधीजी का मानना है कि यद्यपि मनुष्य में पशु प्रवृत्तियाँ भी होती हैं जिसके कारण वह हिंसा आदि कार्यों में लगा रहता है परंतु उसमें वह क्षमता भी होती है कि वह अपने भीतर छुपे सत्य को पहचाने और निरन्तर उसका अनुगमन करे। गांधी जी का कहना है कि “हम पशुबल के साथ पैदा हुए थे किंतु हमारा जन्म हुआ था अपने भीतर निवास करने वाले ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिए। वस्तुतः यही मानव का विशेषाधिकार है जो उसे पशु दृष्टि से पृथक् करता है।”

मानव स्वभाव संबंधी उनकी यह अवधारणा सनातन परम्परा का ही नवीन संस्करण है। इसी क्रम में वे कहते हैं कि मनुष्य सदैव अपूर्ण रहता है। उपनिषदों की भाँति वे भी यह मानते हैं कि केवल ब्रह्म ही पूर्ण है। मनुष्य को पूर्णता की दिशा में सदैव प्रयासरत रहना चाहिए। कोई भी व्यक्ति इतना बुरा नहीं होता कि उसे सुधारा न जा सके और न ही कोई व्यक्ति पूर्णतः सद्गुणी होता है। मनुष्य अपने आप में एक साध्य है, साधन नहीं। प्रत्येक व्यक्ति में अपने मस्तिष्क के प्रयोग द्वारा अपनी शक्तियों को समझने की क्षमता है और उसके पास वह हृदय है जिसके द्वारा वह स्वयं में अपने विश्वास को व्यवहार में उतार सकता है। स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व तथा मानवाधिकार के आधुनिक संप्रत्यय को गांधी जी ने मनुष्य की इसी सनातन प्रवृत्ति में निहित पाया। गांधी का विश्वास है कि मनुष्य में ईश्वरीय अंश विद्यमान है इसलिए स्वतंत्रता उसकी

अंतर्निहित प्रवृत्ति है जिसकी उपलब्धि के लिए उसे अधिकार मिलना ही चाहिए। साथ ही उसका देवत्व उसे सामाजिक कर्तव्य बोध से बाँधे रखता है। इस दृष्टि से मानव एवं मानव के बीच कोई भेद नहीं किया जा सकता। समानता आत्मोपगम्य के बोध से ही सम्भव है। गांधी की दृष्टि में नैतिक गुणों के रूप में स्वतंत्रता और समानता आध्यात्मिक बोध के आयाम हैं न कि राजकीय दण्ड शक्ति से प्राप्य कानूनी अधिकारों की स्थिति।

मानव जीवन के लक्ष्य के प्रति गांधी जी की जो दृष्टि थी वह मूलतः भारतीय परम्परा से निःसृत थी। उनके अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य है— मोक्ष की प्राप्ति या ईश्वर का साक्षात्कार। स्वयं अपने बारे में उन्होंने लिखा है कि “जो मैं उपलब्ध करना चाहता हूँ तथा जिसकी उपलब्धि के लिए मैं 30 वर्षों से लालायित हूँ वह आत्मोपलब्धि, ईश्वर का साक्षात्कार और कुछ नहीं वरन् सत्य की उपलब्धि ही है।” उनका कथन है कि—“जीवन एक प्रेरणा है। इसका लक्ष्य पूर्णता के लिए प्रयत्नशील रहना है जो आत्मोपलब्धि ही है।”⁸ वे वेदांत दर्शन के उस सिद्धांत में विश्वास करते थे जिसमें आत्मा को परमात्मा का ही अंश माना गया है। मनुष्य द्वारा अपनी आत्मा के मूल में निहित देवत्व की अनुभूति ही गांधी के मानव प्रकृति का मूल तत्व है। “आत्मा अमर, स्थायी और सर्वशक्तिमान है। यह शुद्ध, प्रबुद्ध और क्षमाशील है। यही गुण उस सर्वशक्तिमान ईश्वर के भी हैं”⁹ अतः गांधी के लिए मनुष्य केवल अस्थि मांस का समवय न होकर उससे कुछ अधिक और उससे परे भी कुछ है। उनके अनुसार इस समस्त दृश्य और अस्थायी, अचेतन पदार्थ समूह के पीछे चौतन्य शक्ति आत्मा है जो अदृश्य, शाश्वत सर्वव्यापी एवं सर्व प्रबुद्ध है। यह ईश्वर का अंश है, मनुष्य में निहित ईश्वरात्मा है। गांधी की दृष्टि में ईश्वर और मनुष्य में तथा सृष्टि के निम्नतर योनियों में भी कोई अंतर्विरोध नहीं है। यंग इंडिया में उन्होंने लिखा है— “मैं ईश्वर की परिपूर्ण एकता में विश्वास करता हूँ अतः मानवता की भी परिपूर्ण एकता का विश्वास ही हूँ।”¹⁰ गांधी ने तो यहाँ तक कहा है कि “मैं अद्वैत का विश्वासी हूँ। मैं मनुष्यों की, बल्कि समस्त जीवों की अनिवार्य एकता का विश्वासी हूँ।”¹¹

वस्तुतः आत्मा संबंधी महात्मा गांधी की अवधारणा उपनिषदों से प्रभावित है। उनका मानना है कि चूंकि मनुष्य मूलतः अपने आत्म तत्व से परमात्मा का ही अंश है तो वह अपने नश्वर शरीर अर्थात् भौतिक शरीर से उत्पन्न सभी दुर्गुणों— हिंसा, अन्याय, लोभ, मोह, मद, स्वार्थ, अपूर्णता, अज्ञानता, घृणा, तृष्णा इत्यादि पर विजय प्राप्त कर सकता है। यह आत्मा जब सत्य— अहिंसा के माध्यम से देवत्व की अनुभूति करने लगेगी तो उसे प्राणि—मात्र के प्रति आत्मीयता हो जाएगी। यही मनुष्य का सर्वोच्च लक्ष्य है। जैसा कि ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है—

“यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्ससे ।।”¹²

अर्थात् जो व्यक्ति सभी प्राणियों को अपनी आत्मा में देखा है और सभी प्राणियों में स्वयं की आत्मा का दर्शन करता है वह किसी से घृणा नहीं करता।

इसी भावना का समर्थन श्रीमद्भगवद्गीता में भी किया गया है:—

“सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि ।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।”¹³

अर्थात् वास्तविक योगी समस्त जीवों में मुझको तथा मुझमें समस्त जीवों को देखा है। निसंदेह स्वरूपसिद्ध व्यक्ति मुझ परमेश्वर को सर्वत्र देखता है । जो मुझे सर्वत्र देखता है और सब कुछ मुझमें देखता है उसके लिए न तो मैं कभी अदृश्य होता हूँ और न वह मेरे लिए अदृश्य होता है।

गांधी की दृष्टि में मानव जीवन का लक्ष्य सनातन संस्कृति से भिन्न न था किंतु मोक्ष प्राप्ति का उनका सिद्धांत प्राचीन भारतीय दर्शन के परम्परागत दृष्टिकोण से भिन्न है। अधिकांश हिंदू तत्त्वदर्शियों ने जहाँ मुमुक्षु को समस्त लौकिक व्यवहारों से तटस्थ रहने का सुझाव दिया है वहाँ गान्धी जी का मानना है कि निर्वाण या ईश्वर तक पहुँचने का एकमात्र तरीका सामाजिक जीवन के संघर्षों में सक्रिय रूप से भाग लेना है। अतः वह कहते हैं कि “अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुफा की शरण लेना मेरे लिए आवश्यक नहीं है।”¹⁴ गांधीजी के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति अथवा आत्मोपलब्धि सार्वजनीन प्रेम की साधना द्वारा ही सम्भव है। चूंकि ईश्वर हममें से प्रत्येक में है। उसका निवास समस्त मानव एवं मानवेतर प्राणियों में भी है। अतः हमें निर्विवाद रूप से प्रत्येक मानव से तादात्म्य स्थापित करना चाहिए। उनकी दृष्टि में समस्त प्राणियों के मध्य एक ही विद्यमान है और यही सत्य है। इसलिए विश्व प्रेम के अभ्यास द्वारा व्यक्ति सत्य या ईश्वर की उपलब्धि कर सकता है । जैसा कि गीता में कहा गया है कि “जो पुरुष सभी प्राणियों में एक ही परमेश्वर को स्थित देखता है तथा संपूर्ण संसार को एक ही आत्मा का विस्तार मानता है वही ब्रह्म अथवा सत्य को प्राप्त कर सकता है।”¹⁵

इस प्रकार गांधीजी मनुष्य को, जीवन के अंतिम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष या ईश्वर की प्राप्ति के लिए संसार को त्यागने का परामर्श नहीं देते हैं। यहाँ वे अपने को अद्वैती से अनेकांतवादी या स्यादवादी में परिवर्तित कर लेते हैं। इसलिए उन्हें संसार को सत्य मानने में कोई आपत्ति नहीं होती और वे समाज एवं राज्य में रहकर

ही मानव सेवा द्वारा सत्य के साक्षात्कार की चेष्टा करते हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वर या परम सत्य तक पहुँचने का मार्ग सामान्य एवं पीड़ित मानवता की सेवा है। ऐसा कह कर एक ओर गांधीजी हमारे मनीषियों, वेदांत-वेत्ताओं के दर्शन से अलग हो जाते हैं, तो दूसरी ओर परम सत्य एवं परमेश्वर जैसे दुर्लभ प्रत्यय को प्रत्येक मानव की पकड़ के भीतर डाल देते हैं।¹⁶ वस्तुतः मानव जीवन एवं मनुष्यता के अंतिम लक्ष्य के प्रति गांधी के विचारों का सार यह है कि आत्माओं में एकत्व की अनुभूति ही बंधनों से मुक्ति का उपाय है मोक्ष की प्राप्ति है और यह अनुभूति ही राजनीति की शुद्धता का मार्ग है, जिस पर चलकर राजनीति को स्वार्थ से परमार्थ की ओर तथा सत्ता प्राप्ति से मोक्ष प्राप्ति की ओर मोड़ा जा सकता है। प्रोफेसर सोरोकिन ने कहा है कि **“राजनीति का भविष्य मानवता की भविष्य के साथ जुड़ा है।”**¹⁷ इसलिए राजनीति का आध्यात्मीकरण आवश्यक है। गांधी वाङ्मय में अध्यात्म अर्थात् मोक्ष मानव जीवन का परम लक्ष्य है। मोक्ष उनके लिए सार्वजनीन प्रेम की अनुभूति है, जो मानव सेवा में परिलक्षित होता है। मानव सेवा के लिए सामाजिक –राजनीतिक सक्रियता अनिवार्य है। इस प्रकार राजनीति एवं मानव जीवन आपस में साधन (राजनीति) एवं साध्य के समान हैं। वस्तुतः गांधी की राजनीति का मूल आधार ही नैतिकता एवं आध्यात्मिकता थी। उनके लिए राजनीति ईश्वर साक्षात्कार एवं मोक्ष का साधन थी। उनका कहना था कि— **“ईश्वर साक्षात्कार के लिए मैं बड़े से बड़ा बलिदान भी दे सकता हूँ। मेरी सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक और सेवा सम्बन्धी सभी प्रवृत्तियाँ इसी एक लक्ष्य की ओर अभिमुख हैं। मुझे यह अनुभूति हो चुकी है कि भगवान दुखियों के बीच में ही रहते हैं। इसलिए शोषित और परतंत्र व्यक्तियों के लिए मेरे हृदय में इतनी करुणा है। चूँकि मैं राजनीति में हिस्सा लिए बिना इस प्रकार की सेवा नहीं कर सकता इसलिए मैं राजनीति में हूँ।”**¹⁸ अतः गांधी ने राजनीति को अध्यात्म एवं नैतिकता से नियंत्रित होने का जो संदेश दिया वह उनकी रूढ़िवादिता का नहीं वरन् दूरदर्शिता का परिचायक है जिसे आज के वैज्ञानिक भी स्वीकार कर रहे हैं।

संदर्भ: —

1. हरिजन, 29 अगस्त 1936, पृष्ठ 226
2. महाप्रज्ञ युवाचार्य, “लोकतन्त्र, नया व्यक्ति, नया समाज”, जैन विश्वभारती, लांडनू, राजस्थान 1993, पृष्ठ 33
3. महात्मा गांधी “सत्य के प्रति प्रयोग अथवा आत्मकथा” (हिंदी) अनुवादक —काशीनाथ त्रिवेदी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद ,2000, पृ 432
4. यंग इण्डिया 12 मई 1920

5. महात्मा गांधी "सत्य के प्रति प्रयोग अथवा आत्मकथा" (हिंदी) अनुवादक –काशीनाथ त्रिवेदी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद ,2000, पृ 432
6. हरिजन, 24 दिसंबर 1938
7. हरिजन, 1 फरवरी 1935
8. हरिजन, 22 जून 1935 ,पृष्ठ 148
9. हरिजन, 12नवम्बर 1938 पृ 327
10. यंग इंडिया, खण्ड-2, पृ 79
11. यंग इंडिया, खण्ड-2, पृ 421
12. ईशावास्योपनिषद : 6
13. श्रीमद्भगवद्गीता: 6 / 29–30
14. यंग इंडिया, अप्रैल 1924
15. श्रीमद्भगवद्गीता: 13 / 27, 28, 29
16. त्रिपाठी, एस, "परम्परा का अभिनव संस्करण : गांधी के आइने में", भारती पब्लिकेशन, फैजाबाद, 2016, पृष्ठ 119
17. पी. सोरोकिन, रिकंस्ट्रक्शन आफ ह्यूमैनिटी, भारतीय विद्या मंदिर, मुंबई, नवभारत प्रेस, 1968, पृ. 13–14
18. यंग इण्डिया, 11 सितम्बर 1924